जैन तर्कशास्त्र में अनुमान विमर्श

डा० दरबारीलाल कोठिया
[पूर्व रीडर का० हि० वि० वि० वाराणसी]

भारतीय तर्कशास्त्र में अनुमान पर पर्याप्त विमर्श किया गया है और संख्याबद्ध ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है।

जैन दार्शनिकों द्वारा किया गया अनुमान विमर्श भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। जैन तार्किकों ने अनुमान में उल्लेखनीय अभिवृद्धि और संशोधन दोनों किये हैं। यहाँ हम उसी पर एक समीक्षात्मक एवं ऐतिहासिक विमर्श कर रहे हैं।

अध्ययन से अवगत होता है कि उपनिषद्काल में अनुमान की आवश्यकता एवं प्रयोजन पर बल दिया जाने लगा था। उपनिषदों में **'आत्मावाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः'**[1] आदि वाक्यों द्वारा आत्मा के श्रवण के साथ मनन पर भी बल दिया गया है, जो उपपत्तियों (युक्तियों) के द्वारा किया जाता था।[2] इससे स्पष्ट है कि उस काल में अनुमान को भी श्रुति की तरह ज्ञान का साधन माना जाता था—उसके बिना दर्शन अपूर्ण रहता था। यह सच है कि अनुमान का 'अनुमान' शब्द से व्यवहार होने की अपेक्षा 'वाकोवाक्यम्', 'आन्वीक्षिकी', 'तर्कविद्या', 'हेतुविद्या' जैसे शब्दों द्वारा अधिक होता था।

प्राचीन जैन वाङ्मय में ज्ञानमीमांसा (ज्ञानमार्गणा) के अन्तर्गत अनुमान का 'हेतुवाद' शब्द से निर्देश किया गया है और उसे श्रुत का एक पर्याय (नामान्तर) बतलाया गया है। तत्त्वार्थसूत्रकार ने उसका 'अभिनिबोध' नाम से उल्लेख किया है। तात्पर्य यह कि जैनदर्शन में भी अनुमान अभिमत है तथा प्रत्यक्ष (सांव्यवहारिक और पारमार्थिक ज्ञानों) की तरह उसे भी प्रमाण एवं अर्थनिश्चायक माना गया है। अन्तर केवल उनमें वैशद्य और अवैशद्य का है। प्रत्यक्ष विशद है और अनुमान अविशद (परोक्ष)।

अनुमान के लिये किन घटकों की आवश्यकता है, इसका आरम्भिक प्रतिपादन कणाद ने किया प्रतीत होता है। उन्होंने अनुमान का "अनुमान' शब्द से निर्देश न कर 'लैङ्गिक' शब्द से किया है, जिससे ज्ञात होता है कि अनुमान का मुख्य घटक लिङ्ग है। सम्भवतः इसी कारण उन्होंने मात्र लिङ्गों, लिङ्गरूपों और लिङ्गाभासों का निरूपण किया है। उसके और भी कोई घटक हैं, इसका कणाद ने कोई उल्लेख नहीं किया। उनके भाष्यकार प्रशस्तपाद ने अवश्य प्रतिज्ञादि पाँच अवयवों को उसका घटक प्रतिपादित किया है।

तर्कशास्त्र का निबद्धरूप में स्पष्ट विकास अक्षपाद के न्यायसूत्र में उपलब्ध होता है। अक्षपाद ने अनुमान को 'अनुमान' शब्द से ही उल्लिखित किया तथा उसकी कारणसामग्री, भेदों, अवयवों और हेत्वाभासों का स्पष्ट विवेचन किया है। साथ ही अनुमान परीक्षा, वाद, जल्प, वितण्डा, छल, जाति, निग्रहस्थान जैसे अनुमान-सहायक तत्त्वों का प्रतिपादन करके अनुमान को शास्त्रार्थोपयोगी और एक स्तर तक पहुँचा दिया है। वात्स्यायन, उद्योतकर, वाचस्पति, उदयन और गङ्गेश ने उसे विशेष परिष्कृत किया तथा व्याप्ति, पक्षधर्मता, परामर्श जैसे तदुपयोगी अभिनव तत्त्वों को विविक्त करके उनका विस्तृत एवं सूक्ष्म निरूपण किया है। वस्तुतः अक्षपाद और उनके अनुवर्ती तार्किकों ने अनुमान को इतना परिष्कृत किया कि उनका दर्शन 'न्याय (तर्क—अनुमान) दर्शन' के नाम से ही विश्रुत हो गया।

असंग, वसुबन्धु, दिङ्नाग, धर्मकीर्ति प्रभृति बौद्ध तार्किकों ने न्यायदर्शन की समालोचनापूर्वक अपनी विशिष्ट और नयी मान्यताओं के आधार पर अनुमान का सूक्ष्म और प्रचुर चिन्तन प्रस्तुत किया है। इनके चिन्तन का अवश्यम्भावी परिणाम यह हुआ कि उत्तरकालीन समग्र भारतीय तर्कशास्त्र उससे प्रभावित हुआ और अनुमान की विचारधारा पर्याप्त आगे बढ़ने के साथ सूक्ष्म-से-सूक्ष्म एवं जटिल होती गयी। वास्तव में बौद्ध तार्किकों के चिन्तन ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तर्क में आयी कुण्ठा को हटाकर और सभी प्रकार के परिवेशों को दूर कर उन्मुक्त भाव से तत्त्व चिन्तन की क्षमता प्रदान की। फलतः सभी दर्शनों में स्वीकृत अनुमान पर अधिक विचार हुआ और उसे महत्त्व मिला।

ईश्वरकृष्ण, युक्तिदीपिकाकार, माठर, विज्ञानभिक्षु आदि सांख्यविद्वानों तथा प्रभाकर, कुमारिल, पार्थसारथि प्रभृति मीमांसक चिन्तकों ने भी अपने-अपने ढंग से अनुमान का चिन्तन किया है। हमारा विचार है कि इन चिन्तकों का चिन्तन-विषय प्रकृति-पुरुष और क्रिया-काण्ड होते हुए भी वे अनुमान-चिन्तन से अछूते नहीं रहे। श्रुति के अलावा अनुमान को भी इन्हें स्वीकार करना पड़ा और उसका कम-बढ़ विवेचन किया है।

जैन विचारक तो प्रारम्भ से ही अनुमान को मानते आये हैं। भले ही उसे 'अनुमान' नाम न देकर 'हेतुवाद' या 'अभिनिबोध' संज्ञा से उन्होंने उसका व्यवहार किया हो। तत्त्वज्ञान, स्वतत्त्वसिद्धि, परपक्षदूषणोद्भावन के लिए उसे स्वीकार करके उन्होंने उसका पर्याप्त विवेचन किया है। उनके चिन्तन में जो विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं उनमें से कुछ का उल्लेख यहाँ किया जाता है :—

अनुमान का परोक्ष प्रमाण में अन्तर्भाव

अनुमान-प्रमाणवादी सभी भारतीय तार्किकों ने अनुमान को स्वतन्त्र प्रमाण स्वीकार किया है। पर जैन तार्किकों ने उसे स्वतन्त्र प्रमाण नहीं माना। प्रमाण के उन्होंने मूलतः दो भेद माने हैं—(१) प्रत्यक्ष और (२) परोक्ष।

अनुमान परोक्ष प्रमाण में अन्तर्भूत है, क्योंकि वह अविशद ज्ञान है और उसके द्वारा अप्रत्यक्ष अर्थ की प्रतिपत्ति होती है। परोक्ष-प्रमाण का क्षेत्र इतना व्यापक और विशाल है कि स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अर्थापत्ति सम्भव, अभाव और शब्द जैसे अप्रत्यक्ष अर्थ के परिच्छेदक अविशद ज्ञानों का इसी में समावेश है तथा वैशद्य एवं अवैशद्य के आधार पर स्वीकृत प्रत्यक्ष और परोक्ष के अतिरिक्त अन्य प्रमाण मान्य नहीं है।

अर्थापत्ति अनुमान से पृथक् नहीं

प्रभाकर और भाट्ट मीमांसक अनुमान से पृथक् अर्थापत्ति नाम का स्वतन्त्र प्रमाण मानते हैं। उनका मन्तव्य है कि जहाँ अमुक अर्थ अमुक अर्थ के बिना न होता हुआ उसका परिकल्पक होता है वहाँ अर्थापत्ति प्रमाण माना जाता है। जैसे—"**पीनोऽयं देवदत्तो दिवा न भुंक्ते**" इस वाक्य में उक्त 'पीनत्व' अर्थ' भोजन' के बिना न होता हुआ 'रात्रिभोजन' की कल्पना करता है, क्योंकि दिवाभोजन का निषेध वाक्य में स्वयं घोषित है। इस प्रकार के अर्थ का बोध अनुमान से न होकर अर्थापत्ति से होता है। किन्तु जैन विचारक उसे अनुमान से भिन्न स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि अनुमान अन्यथानुपपन्न (अविनाभावी) हेतु से उत्पन्न होता है और अर्थापत्ति अन्यथानुपद्यमान अर्थ से। अन्यथानुपपन्न हेतु और अन्यथानुपपद्यमान अर्थ दोनों एक हैं—उनमें कोई अन्तर नहीं है। अर्थात् दोनों ही व्याप्ति विशिष्ट होने से अभिन्न हैं। डा० देवराज भी यही बात प्रकट करते हुए कहते हैं कि "एक वस्तु द्वारा दूसरी वस्तु का आक्षेप तभी हो सकता है जब दोनों में व्याप्यव्यापकभाव या व्याप्ति सम्बन्ध हो।[3] देवदत्त मोटा है और दिन में खाता नहीं है। यहाँ अर्थापत्ति द्वारा रात्रि-भोजन की कल्पना की जाती है, पर वास्तव में मोटापन भोजन का अविनाभावी होने तथा दिन में भोजन का निषेध होने से वह देवदत्त के रात्रिभोजन का अनुमापक है। वह अनुमान इस प्रकार है—'**देवदत्तः रात्रौ भुंक्ते, दिवाऽभोजित्वे सति पीनत्वान्यथानुपपत्तेः।**' यहाँ अन्यथानुपपत्ति से अन्तर्व्याप्ति विवक्षित है, बहिर्व्याप्ति या सकलव्याप्ति नहीं, क्योंकि ये दोनों व्याप्तियाँ अव्यभिचरित नहीं हैं। अतः अर्थापत्ति और अनुमान दोनों व्याप्तिपूर्वक होने से एक ही हैं—पृथक्-पृथक् प्रमाण नहीं।

अनुमान का विशिष्ट स्वरूप

न्यायसूत्रकार अक्षपाद की '**तत्पूर्वकमनुमानम्**', प्रशस्तपाद की '**लिङ्गदर्शनात्संजायमानं लैङ्गिकम्**' और उद्योतकर की '**लिङ्गपरामर्शोऽनुमानम्**' परिभाषाओं में केवल कारण का निर्देश है, अनुमान के स्वरूप का नहीं। उद्योतकर की एक अन्य परिभाषा '**लैङ्गिकी प्रतिपत्तिरनुमानम्**' में भी लिङ्गरूप कारण का उल्लेख है, स्वरूप का नहीं। दिङ्नागशिष्य शङ्करस्वामी की '**अनुमानं लिङ्गादर्थदर्शनम्**' परिभाषा में यद्यपि कारण और स्वरूप दोनों की अभिव्यक्ति है, पर उसमें कारण के रूप में लिङ्ग को सूचित किया है, लिङ्ग के ज्ञान को नहीं। तथ्य यह है कि अज्ञायमान धूमादि लिङ्ग अग्नि आदि के अनुमापक नहीं हैं। अन्यथा जो पुरुष सोया हुआ है, मूर्च्छित है, अगृहीत-व्याप्तिक है उसे भी पर्वत में धूम के सद्भाव मात्र से अग्नि का अनुमान हो जाना चाहिए, किन्तु ऐसा नहीं है। अतः शंकरस्वामी के उक्त अनुमानलक्षण में '**लिंगात्**' के स्थान पर '**लिङ्गदर्शनात्**' पद होने पर ही वह पूर्ण अनुमान लक्षण हो सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन तार्किक अकलंकदेव ने जो अनुमान का स्वरूप प्रस्तुत किया है वह उक्त न्यूनताओं से मुक्त है। उनका लक्षण है—

लिङ्गात्साध्याविनाभावाभिनिबोधैकलक्षणात् ।
लिङ्गिधीरनुमानं तत्फलं हानादिबुद्धयः ॥

इसमें अनुमान के साक्षात्कारण—लिङ्गज्ञान का भी प्रतिपादन है और उसका स्वरूप भी '**लिङ्गिधीः**' शब्द के द्वारा निर्दिष्ट है। अकलंक ने स्वरूप-निर्देश में केवल '**धीः**' या '**प्रतिपत्ति**' नहीं कहा, किन्तु '**लिङ्गिधीः**' कहा है, जिसका अर्थ है साध्य का ज्ञान, और साध्य का ज्ञान होना ही अनुमान है। न्यायप्रवेशकार शंकरस्वामी ने साध्य का स्थानापन्न 'अर्थ' का अवश्य निर्देश किया है। पर उन्होंने कारण का निर्देश अपूर्ण किया है, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। अकलंक के इस लक्षण की एक विशेषता और भी है। वह यह कि उन्होंने '**तत्फलं हानादिबुद्धयः**' शब्दों द्वारा अनुमान का फल भी निर्दिष्ट किया है। सम्भवतः इन्हीं सब बातों से उत्तरवर्ती सभी जैन तार्किकों ने अकलंकदेव की इस प्रतिष्ठित और पूर्ण अनुमान परिभाषा को ही अपनाया। इस अनुमान लक्षण से स्पष्ट है कि वही साधन अथवा लिङ्ग-लिङ्गि (साध्य—अनुमेय) का गमक हो सकता है जिसके अविनाभाव का निश्चय है। यदि उसमें अविनाभाव का निश्चय नहीं है तो वह साधन नहीं है, भले ही उसमें तीन या पाँच रूप विद्यमान हों। जैसे 'वज्र लोहलेख्य है, क्योंकि पार्थिव है, काष्ठ की तरह' इत्यादि हेतु तीन रूपों और पाँच रूपों से सम्पन्न होने पर भी अविनाभाव के अभाव से सद्धेतु नहीं हैं, अपितु हेत्वाभास हैं और इसी से वे अपने साध्यों के अनुमापक नहीं माने जाते। इसी प्रकार 'एक मुहूर्त बाद शकट का उदय होगा, क्योंकि कृत्तिका का उदय हो रहा है,' 'समुद्र में वृद्धि होनी चाहिए अथवा कुमुदों का विकास होना चाहिए, क्योंकि चन्द्र का उदय है' आदि हेतुओं में पक्ष-धर्मत्व न होने से न त्रिरूपता है और न पंचरूपता। फिर भी अविनाभाव के होने से कृत्तिका का उदय शकटोदय का और चन्द्र का उदय समुद्रवृद्धि एवं कुमुद विकास का गमक है।

हेतु का एकलक्षण (अन्यथानुपपन्नत्व) स्वरूप

हेतु के स्वरूप का प्रतिपादन अक्षपाद से आरम्भ होता है, ऐसा अनुसन्धान से प्रतीत होता है। उनका वह लक्षण साधर्म्य और वैधर्म्य दोनों दृष्टान्तों पर आधारित है। अतएव नैयायिक चिन्तकों ने उसे द्विलक्षण, त्रिलक्षण, चतुर्लक्षण और पंचलक्षण प्रतिपादित किया तथा उसकी व्याख्याएँ की हैं। वैशेषिक, बौद्ध, सांख्य आदि विचारकों ने उसे मात्र त्रिलक्षण बतलाया है। कुछ तार्किकों ने षड्लक्षण और सप्तलक्षण भी उसे कहा है, जैसा कि हमने अन्यत्र विचार किया है।[४] पर जैन लेखकों ने अविनाभाव को ही हेतु का प्रधान और एकलक्षण स्वीकार किया है, तथा त्रैरूप्य, पाँचरूप्य आदि को अव्याप्त और अतिव्याप्त बतलाया है, जैसा कि ऊपर अनुमान के स्वरूप में प्रदर्शित उदाहरणों से स्पष्ट है। इस अविनाभाव को ही अन्यथानुपपन्नत्व अथवा अन्यथानुपपत्ति या अन्तर्व्याप्ति कहा है। स्मरण रहे कि यह अविनाभाव या अन्यथानुपपन्नत्व जैन लेखकों की ही उपलब्धि है जिसके उद्भावक आचार्य समन्तभद्र हैं, यह हमने विस्तार के साथ अन्यत्र विवेचन किया है।

अनुमान का अङ्ग : एकमात्र व्याप्ति

न्याय, वैशेषिक, सांख्य, मीमांसक और बौद्ध सभी ने पक्षधर्मता और व्याप्ति को अनुमान का अंग माना है। परन्तु जैन तार्किकों ने केवल व्याप्ति को उसका अंग बतलाया है। उनका मत है कि अनुमान में पक्षधर्मता अनावश्यक है। '**उपरि वृष्टिरभूत् अधोपूरान्यथानुपपत्तेः**' आदि अनुमानों में हेतु पक्षधर्म नहीं है, फिर भी व्याप्ति के बल से वह वह गमक है। "**स श्यामस्तत्पुत्रत्वादितरतत्पुत्रवत्**" इत्यादि असद् अनुमानों में हेतु पक्षधर्म हैं किन्तु अविनाभाव न होने से वे अनुमापक नहीं हैं। अतः जैन चिन्तक अनुमान का अङ्ग एकमात्र व्याप्ति (अविनाभाव) को ही स्वीकार करते हैं, पक्षधर्मता को नहीं।

पूर्वचर, उत्तरचर और सहचर हेतुओं की परिकल्पना

अकलंकदेव ने कुछ ऐसे हेतुओं की परिकल्पना की है जो उनसे पूर्व नहीं माने गये थे। उनमें मुख्यतया पूर्वचर, उत्तरचर और सहचर ये तीन हेतु हैं। इन्हें किसी अन्य तार्किक ने स्वीकार किया हो, यह ज्ञात नहीं। किन्तु अकलंक ने इनकी आवश्यकता एवं अतिरिक्तता का स्पष्ट निर्देश करते हुए स्वरूप प्रतिपादन किया है। अतः यह उनकी देन कही जा सकती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिपाद्यों की अपेक्षा अनुमान-प्रयोग

अनुमान प्रयोग के सम्बन्ध में जहाँ अन्य भारतीय दर्शनों में व्युत्पन्न और अव्युत्पन्न प्रतिपाद्यों की विवक्षा किये बिना अवयवों का सामान्य कथन मिलता है वहाँ जैन विचारकों ने उक्त प्रतिपाद्यों की अपेक्षा उनका विशेष प्रतिपादन भी किया है। व्युत्पन्नों के लिए उन्होंने पक्ष और हेतु ये दो अवयव आवश्यक बतलाये हैं। उन्हें दृष्टान्त आवश्यक नहीं है। **'सर्वं क्षणिकं सत्त्वात्'** जैसे स्थलों में बौद्धों ने, **'सर्वमभिधेयं प्रमेयत्वात्'** जैसे केवलान्वयिहेतुक अनुमानों में नैयायिकों ने भी दृष्टान्त को स्वीकार नहीं किया। अव्युत्पन्नों के लिए उक्त दोनों अवयवों के साथ दृष्टान्त, उपनय और निगमन इन तीन अवयवों की भी जैन चिन्तकों ने यथायोग्य आवश्यकता प्रतिपादित की है। इसे और स्पष्ट यों समझिए—

गृद्धपिच्छ, समन्तभद्र, पूज्यपाद और सिद्धसेन के प्रतिपादनों से अवगत होता है कि आरम्भ में प्रतिपाद्य-सामान्य की अपेक्षा से पक्ष, हेतु और दृष्टान्त इन तीन अवयवों से अभिप्रेतार्थ (साध्य) की सिद्धि की जाती थी। पर उत्तरकाल में अकलंक का संकेत पाकर कुमारनन्दि और विद्यानन्द ने प्रतिपाद्यों को व्युत्पन्न और अव्युत्पन्न दो वर्गों में विभक्त करके उनकी अपेक्षा से पृथक्-पृथक् अवयवों का कथन किया। उनके बाद माणिक्यनन्दि, देवसूरि आदि परवर्ती जैन-ग्रन्थकारों ने उनका समर्थन किया और स्पष्टतया व्युत्पन्नों के लिए पक्ष और हेतु ये दो तथा अव्युत्पन्नों के बोधार्थ उक्त दो के अतिरिक्त दृष्टान्त, उपनय और निगमन ये तीन सब मिलाकर पाँच अवयव निरूपित किये। भद्रबाहु ने प्रतिज्ञाशुद्धि आदि दश अवयवों का भी उपदेश दिया, जिसका अनुसरण देवसूरि, हेमचन्द्र और यशोविजय ने किया।

व्याप्ति का ग्राहक एकमात्र तर्क

अन्य भारतीय दर्शनों में भूयोदर्शन, सहचारदर्शन और व्यभिचाराग्रह को व्याप्तिग्राहक माना गया है। न्यायदर्शन में वाचस्पति और सांख्यदर्शन में विज्ञानभिक्षु इन दो तार्किकों ने व्याप्तिग्रह की उपर्युक्त सामग्री में तर्क को भी सम्मिलित कर लिया। उनके बाद उदयन, गंगेश, वर्द्धमान प्रभृति तार्किकों ने भी उसे व्याप्तिग्राहक मान लिया। पर स्मरण रहे, जैन परम्परा में आरम्भ से तर्क को, जिसे चिन्ता, ऊहा आदि शब्दों से व्यवहृत किया गया है, अनुमान की एकमात्र सामग्री के रूप में प्रतिपादित किया है। अकलंक ऐसे जैन तार्किक हैं, जिन्होंने वाचस्पति और विज्ञानभिक्षु से पूर्व सर्वप्रथम तर्क को व्याप्तिग्राहक समर्थित एवं सम्पुष्ट किया तथा सबलता से उसका प्रामाण्य स्थापित किया। उनके पश्चात् सभी ने उसे व्याप्तिग्राहक स्वीकार कर लिया।

तथोपपत्ति और अन्यथानुपत्ति

यद्यपि बहिर्व्याप्ति, सकलव्याप्ति और अन्तर्व्याप्ति के भेद से व्याप्ति के तीन भेदों, समव्याप्ति और विषम-व्याप्ति के भेद से उसके दो प्रकारों तथा अन्वयव्याप्ति और व्यतिरेकव्याप्ति इन भेदों का वर्णन तर्कग्रन्थों में उपलब्ध होता है, किन्तु तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्ति इन दो व्याप्ति प्रकारों (व्याप्ति प्रयोगों) का कथन केवल जैन तर्कग्रन्थों में पाया जाता है। इन पर ध्यान देने पर जो विशेषता ज्ञात होती है वह यह है कि अनुमान एक ज्ञान है, उसका उपादान कारण ज्ञान ही होना चाहिए। तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्ति ये दोनों ज्ञानात्मक हैं जबकि उपर्युक्त व्याप्तियाँ ज्ञेयात्मक हैं। दूसरी बात यह है कि उक्त व्याप्तियों में मात्र अन्तर्व्याप्ति ही एक ऐसी व्याप्ति है, जो हेतु की गमकता में प्रयोजक है, अन्य व्याप्तियाँ अन्तर्व्याप्ति के बिना अव्याप्त और अतिव्याप्त हैं। अतएव वे साधक नहीं हैं तथा यह अन्तर्व्याप्ति ही तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्ति है अथवा उनका विषय है। इन दोनों में से किसी एक का ही प्रयोग पर्याप्त है। इनका विशेष विवेचन अन्यत्र द्रष्टव्य है।[५]

साध्याभास

अकलंक ने अनुमानाभासों के विवेचन में पक्षाभास या प्रतिज्ञाभास के स्थान में साध्याभास शब्द का प्रयोग किया है। अकलंक के इस परिवर्तन के कारण पर सूक्ष्म ध्यान देने पर अवगत होता है कि चूँकि साधन का विषय (गम्य) साध्य होता है और साधन का अविनाभाव (व्याप्ति सम्बन्ध) साध्य के ही साथ होता है, पक्ष या प्रतिज्ञा के साथ नहीं, अतः साधनाभास (हेत्वाभास) का विषय साध्याभास होने से उसे ही साधनाभासों की तरह स्वीकार कर विवेचित करना युक्त है। विद्यानन्द ने अकलंक की इस सूक्ष्म दृष्टि को परखा और उनका सयुक्तिक समर्थन किया। यथार्थ में अनुमान के मुख्य प्रयोजक तत्त्व साधन और साध्य होने से तथा साधन का सीधा सम्बन्ध साध्य के साथ ही होने से साधनाभास की भाँति साध्याभास ही विवेचनीय है। अकलंक ने शक्य, अभिप्रेत और असिद्ध को साध्य तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अशक्य, अनभिप्रेत और सिद्ध को साध्याभास प्रतिपादित किया है—(**साध्यं शक्यमभिप्रेत प्रसिद्धं ततोऽपरम् । साध्याभासं विरुद्धादि साधनाविषयत्वतः ।**)

अकिञ्चितकर हेत्वाभास

हेत्वाभासों के विवेचन-सन्दर्भ में सिद्धसेन ने कणाद और न्यायप्रवेशकार की तरह तीन हेत्वाभासों का कथन किया है, अक्षपाद की भाँति उन्होंने पाँच हेत्वाभास स्वीकार नहीं किये। प्रश्न हो सकता है कि जैन तार्किक हेतु का एक (अविनाभाव-अन्यथानुपपन्नत्व) रूप मानते हैं, अतः उसके अभाव में उनका हेत्वाभास एक ही होना चाहिए। वैशेषिक, बौद्ध और सांख्य हेतु को त्रिरूप तथा नैयायिक पंचरूप स्वीकार करते हैं, अतः उनके अभाव में उनके अनुसार तीन और पाँच हेत्वाभास तो युक्त हैं। पर सिद्धसेन का हेत्वाभास-त्रैविध्य प्रतिपादन कैसे युक्तियुक्त है? इसका समाधान सिद्धसेन स्वयं करते हुए कहते हैं कि चूँकि अन्यथानुपपन्नत्व का अभाव तीन तरह से होता है—कहीं उसकी प्रतीति न होने, कहीं उसमें सन्देह होने और कहीं उसका विपर्यास होने से; प्रतीति न होने पर असिद्ध, सन्देह होने पर अनैकान्तिक और विपर्यास होने पर विरुद्ध ये तीन हेत्वाभास होते हैं।

अकलंक कहते हैं कि यथार्थ में हेत्वाभास एक ही है और वह है अकिंचित्कर, जो अन्यथानुपपन्नत्व के अभाव में होता है। वास्तव में अनुमान का उत्थापक अविनाभावी हेतु ही है, अतः अविनाभाव (अन्यथानुपपन्नत्व) के अभाव में हेत्वाभास की सृष्टि होती है। यतः हेतु एक अन्यथानुपपन्नरूप ही है अतः उसके अभाव में मूलतः एक ही हेत्वाभास मान्य है और वह है अन्यथाउपपन्नत्व अर्थात् अकिंचित्कर। असिद्धादि उसी का विस्तार है। इस प्रकार अकलंक के द्वारा 'अकिंचित्कर' नाम के नये हेत्वाभास की परिकल्पना उनकी अन्यतम उपलब्धि है।

बालप्रयोगाभास

माणिक्यनन्दि ने आभासों का विचार करते हुए अनुमानाभास सन्दर्भ में एक 'बालप्रयोगाभास' नाम के नये अनुमानाभास की चर्चा प्रस्तुत की है। इस प्रयोगाभास का तात्पर्य यह है कि जिस मन्दप्रज्ञ को समझाने के लिए तीन अवयवों की आवश्यकता है उसके लिए दो ही अवयवों का प्रयोग करना, जिसे चार की आवश्यकता है उसे तीन और जिसे पाँच की जरूरत है उसे चार का ही प्रयोग करना अथवा विपरीत क्रम से अवयवों का कथन करना बालप्रयोगाभास है और इस तरह वे चार (द्वि-अवयव प्रयोगाभास, त्रि-अवयव प्रयोगाभास, चतुरवयवप्रयोगाभास और विपरीतावयवप्रयोगाभास), सम्भव हैं। माणिक्यनन्दि से पूर्व इनका कथन दृष्टिगोचर नहीं होता। अतः इनके पुरस्कर्ता माणिक्यनन्दि प्रतीत होते हैं।

अनुमान मतिज्ञान और श्रुतज्ञान दोनों रूप हैं

जैन वाङ्मय में अनुमान को अभिनिबोधमतिज्ञान और श्रुत दोनों निरूपित किया है। तत्त्वार्थसूत्रकार ने उसे अभिनिबोध कहा है जो मतिज्ञान के पर्यायों में पठित है। षट्खण्डागमकार भूतबलि-पुष्पदन्त ने उसे 'हेतुवाद' नाम से व्यवहृत किया है और श्रुत के पर्यायनामों में गिनाया है। यद्यपि इन दोनों कथनों में कुछ विरोध-सा प्रतीत होगा। पर विद्यानन्द ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि तत्त्वार्थसूत्रकार ने स्वार्थानुमान को अभिनिबोध कहा है, जो वचनात्मक नहीं है और षट्खण्डागमकार तथा उनके व्याख्याकार वीरसेन ने परार्थानुमान को श्रुतरूप प्रतिपादित किया है, जो वचनात्मक होता है। विद्यानन्द का यह समन्वयात्मक सूक्ष्म चिन्तन जैन तर्कशास्त्र में एक नया विचार है जो विशेष उल्लेख्य है। इस उपलब्धि का सम्बन्ध विशेषतया जैन ज्ञानमीमांसा के साथ है।

इस तरह जैन चिन्तकों की अनुमान विषय में अनेक उपलब्धियाँ हैं। उनका अनुमान-सम्बन्धी चिन्तन भारतीय तर्कशास्त्र के लिए कई नये तत्त्व प्रदान करता है।

सन्दर्भ एवं सन्दर्भ स्थल

१ बृहदारण्य० २।४।५

२ श्रोतव्यो श्रुतिवाक्योभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः ।
मत्वा च सततं ध्येय एते दर्शनहेतवः ॥

३ पूर्वी और पश्चिमी दर्शन, पृ० ७१।

४ जैन तर्कशास्त्र में अनुमान-विचार, पृ० २५६, वीर सेवामन्दिर ट्रस्ट, वाराणसी १६६६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५ जैन तर्कशास्त्र में अनुमान-विचार, वीर सेवामन्दिर ट्रस्ट प्रकाशन, वाराणसी

सन्दर्भ ग्रन्थ

१ बृहदारण्यक उपनिषद्
२ षट्खण्डागम—भूतबलि पुष्पदन्त
३ भगवतीसूत्र
४ नियमसार तथा प्रवचनसार—कुन्दकुन्द
५ देवागम अपरनाम आप्तमीमांसा—समन्तभद्र, वीर सेवामन्दिर ट्रस्ट, १९६७
६ लघीयस्त्रय, प्रमाणसंग्रह, न्यायविनिश्चय—अकलंक
७ प्रमाण-परीक्षा, पत्र-परीक्षा, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक—विद्यानन्द
८ परीक्षामुख—माणिक्यनन्दि
९ प्रमेयकमल मार्तण्ड—प्रभाचन्द्र
१० प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार— देवसूरि
११ प्रमीणमीमांसा—हेमचन्द्र
१२ न्यायावतार—सिद्धसेन
१३ ज्ञानबिन्दु—यशोविजय
१४ न्यायदीपिका—अभिनव धर्मभूषण
१५ तत्त्वार्थसूत्र—गृद्धपिच्छ (उमास्वामि)
१६ जैन तर्कशास्त्र में अनुमान-विचार, डॉ० दरबारीलाल कोठिया, वीर सेवामन्दिर ट्रस्ट, १९६९

पुष्कर-वाणी

तुम्बा स्वयं में हलका है तो वह सदा पानी पर तैरता है, गेंद हलकी है इसलिए आनन्द से उछलती है। मिट्टी का लेप लगने से तुम्बा पानी में नीचे पैठता है और मिट्टी कीचड़ आदि से भारी होने पर गेंद भी नहीं उछल पाती।

आत्मा भी स्वयं में हलका, भार-रहित है इसलिए सदा ऊर्ध्वगति वाला और सदा प्रसन्नस्थिति वाला है किन्तु विकार-कषायों के भार से दबकर वह निम्नगति वाला हो जाता है।

× × ×

प्रत्येक मनुष्य जिस प्रकार बाह्य आकृति से भिन्न है, उसी प्रकार अन्तर् प्रकृति से भी। जब सब के बाहरी आकार को एक नहीं बनाया जा सकता, तो भीतरी विचार एक कैसे हो सकते हैं।

पुष्कर-वाणी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org